गुणवत्ता का संदर्भ

पिछले दशकों में शिक्षा की बहसों में गुणवत्ता का सरोकार प्रमुख रूप से उभरकर आया है। हालांकि शिक्षा में गुणवत्ता की बहस का अपना एक इतिहास और राजनीति है। कृष्ण कुमार और पद्मा एम. सारंगपाणि अपने एक लेख 'शिक्षा में गुणवत्ता की बहस का इतिहास' में शिक्षा में गुणवत्ता के इतिहास की पड़ताल करते हुए गुणवत्ता को क्रमिक रूप से विकसित होती धारणा के तौर पर चिह्नित करते हुए कहते हैं कि, ''...गुणवत्ता की बहस उन गतिविधियों और प्रक्रियाओं, जिन्हें 'शिक्षा' के रूप में परिभाषित किया जाता है, के 'अनिवार्य चारित्रिक गुणों' की बहस है।'' वे शिक्षा में गुणवत्ता की बहस को शिक्षाशास्त्रीय मानकों पर स्थापित करते हुए इसे शिक्षा के लक्ष्यों की समझ से जोड़ते हैं। इस मायने में शिक्षा की गुणवत्ता की बहस अनिवार्य रूप से शिक्षा को परिभाषित करने, उसके उद्देश्यों के निर्धारण और उनकी प्राप्ति से जुड़ती है। शिक्षा की गुणवत्ता को समझने का यह एक शिक्षाशास्त्रीय संदर्भ है।

इसके अलावा शिक्षा की गुणवत्ता की बहस का दूसरा आयाम शिक्षा पर पड़ रहे नवउदारवादी प्रभाव और इनके द्वारा गढ़ी जा रही गुणवत्ता की परिभाषा है। शिक्षा पर नवउदारवादी प्रभावों, खास तौर पर भूमंडलीकृत पूंजीवाद, के तहत स्कूल को बाजार से जुड़ी एक ऐसी जगह के रूप में देखा जा रहा है जो बाजार के मूल्यों को पोषित करे। यह दृष्टिकोण शिक्षा की गुणवत्ता को बाजार के संदर्भ में परखने पर जोर दे रहा है। यानी शिक्षा बाजार की जरूरत के हिसाब से मजदूर उपलब्ध करवाने और उसके लिए प्रक्रियाएं तय करने में अपनी भूमिका निभाए।

शैक्षिक बहस में यह कहना तो मुश्किल है कि शिक्षा को समाज की जरूरतों से एकदम अलग करके देखा जा सकता है लेकिन शिक्षा के संदर्भ में यह भी मानना मुश्किल है कि वह सिर्फ और सिर्फ बाजार की आवश्यकताओं को पूरा करे। शिक्षा का बाजारवादी नजरिया शिक्षा की सामाजिक-राजनैतिक भूमिका को नजरंदाज करते हुए शिक्षा को सिर्फ और सिर्फ बाजार हितों में उपयोग करना चाहता है। शिक्षा की गुणवत्ता की सामयिक बहस नवउदारवादी प्रभावों से खासी ग्रसित नजर आती है। शिक्षा की अतंर्भूत विशेषताओं को शिक्षा प्रक्रियाओं में स्थान देने और बाजार के हितों का साधन मानने के बीच गुणवत्ता की सामयिक बहस को स्थित किया जा सकता है।

इस अंक में शामिल सभी लेख गुणवत्ता की समस्या को आज के संदर्भ में संबोधित करते हुए समान रूप से गुणवत्ता को भूमंडलीकरण और पूंजीवाद के अन्तर्राष्ट्रीय दबावों के जरिए गढ़े जाने को समस्या के तौर पर रेखांकित करते हैं। प्रो. कृष्ण कुमार का लेख गुणवत्ता के निर्धारण में भूमंडलीकरण और अन्तर्राष्ट्रीय वित्तदाता संस्थाओं के प्रभाव का उल्लेख करते हुए भारत में गुणवत्ता और समानता के मध्य उत्पन्न की गई दरार का जिक्र करते हैं। भारत के संदर्भ में वे बताते हैं कि शिक्षा के सार्वजनीकरण के उद्देश्य को पाने के लिए शिक्षा के लिए ऐसे विकल्पों को वैधानिक दर्जा दिया गया जिनमें समानता के मुद्दे को दरकिनार किया गया। इन प्रयासों ने शिक्षा की गुणवत्ता को गिराने का ही काम किया। इसी के साथ वे चिन्ता जाहिर करते हुए कहते हैं कि शिक्षा के मायनों को बदलने का काम भूमंडलीकृत अर्थव्यवस्था के दौर में किया जा रहा है और शिक्षा की अवधारणा को मात्र सूचनाओं के हस्तातंरण तथा सीखने को सूचना एवं संचार तकनीक के जरिए व्यवहारवादी दृष्टिकोण तक सीमित किया जा रहा है।

पद्मा वेलासकर का लेख भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त सभी की बराबरी और अवसरों की समानता के संदर्भ में भारतीय शिक्षा नीतियों के संदर्भ में शिक्षा की गुणवत्ता की बहस को समझने का प्रयास करती हैं। वे बताती हैं कि इसके बावजूद भारतीय राज्य ने हमेशा ही लिंग, धर्म और जाति के आधार पर स्तरीकृत समाज के लिए शिक्षा की समानता के प्रयास करने में कोताही की है। वे गुणवत्ता और बराबरी तथा न्याय के सिद्धान्त को पोषित करने वाली विलक्षण पहलकदमी को, जो सामान्य स्कूल प्रणाली के तौर पर नीतिगत विमर्श में आई थी, स्वीकृति नहीं मिलना गुणवत्ता की धारणा को जानबूझकर राजनैतिक कुलीनों के द्वारा विफल करना मानती हैं। उनका मानना है कि भारतीय संदर्भ में शिक्षा में गुणवत्ता की चिन्ता नीतिगत दस्तावेजों में गिरते शैक्षिक स्तरों के संदर्भ में हमेशा से ही रही है लेकिन

वर्तमान में जिस तरह शिक्षा व्यवस्था के बहुपरतीकरण को समझने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय और नवउदारवादी प्रभावों को समझना जरूरी है। वे शिक्षा की गुणवत्ता को अन्ततः बराबरी और न्याय के साथ जोड़कर देखती हैं जो मूलतः समाज में बराबरी और न्याय को स्थापित करे।

पद्मा एम. सारंगपाणि अपने लेख में शैक्षिक संदर्भ में गुणवत्ता की समझ को अच्छे स्कूल, शिक्षक, शिक्षाशास्त्र, पाठ्यचर्या और सीखने को पहचानने के लिए जरूरी मानती हैं। लेकिन नवउदारवादी प्रभावों के मद्देनजर गढ़ी गई नई शिक्षा नीति, 1986 ने गुणवत्ता के चरित्र को एक भिन्न रूप दिया। नई शिक्षा नीति ने न्यूनतम अधिगम स्तर की पैरवी करते हुए बच्चों की न्यूनतम उपलब्धि पर जोर देते हुए शिक्षा की गुणवत्ता को मापने लायक नतीजों में तब्दील किया। वे गुणवत्ता की राजनीति को रेखांकित करते हुए कहती हैं कि शिक्षा के सार्वजनीकरण और सुधार के लिए चलाए गए कार्यक्रमों में पाठ्यचर्या, पाठ्यपुस्तकें और शिक्षक की स्वायत्ता के विचार शामिल थे लेकिन इन कार्यक्रमों को पूरा ध्यान शैक्षिक उपलब्धियों के मापन पर ही केन्द्रित हो गया क्योंकि शिक्षा को नवउदारवादी ढांचे में ढाले जाने पर जोर दिया जा रहा था। अन्तर्राष्ट्रीय वित्तदाता संस्थाओं के जरिए शिक्षा में प्रबंधन मॉडल पर दिए जा रहे जोर के चलते वे कक्षा-कक्षीय प्रक्रियाओं में हर दिन और घंटेवार किए जाने वाले प्रबंधन के प्रति चिन्ता जाहिर करते हुए इसे शिक्षा की प्रकृति के साथ असंगत बताती हैं। वर्तमान समय में गुणवत्ता की बहस के द्विभाजन को उजागर करते हुए कहती हैं कि शिक्षा में गुणवत्ता की सामयिक बहस मुख्य रूप से गरीब बच्चों की शिक्षा पर केन्द्रित है। निजी स्कूलों के बारे में यह मान लिया गया कि वे राज्य द्वारा प्रमाणित हैं और शिक्षा की गुणवत्ता का मानक हैं तथा निजी स्कूलों के बारे में यह माना जाना समस्याग्रस्त है कि इन स्कूलों में गुणवत्ता की कोई समस्या नहीं है। अन्त में वे कहती हैं कि जब गुणवत्ता का मुद्दा नीतिगत बहसों में शामिल हो चुका है तो इसे ज्यादा बुनियादी और शैक्षिक सुधारों के अवसर के तौर पर काम लिया जाना चाहिए जो सभी बच्चों की शिक्षा का ख्याल कर सके।

शिक्षा की गुणवत्ता का मुद्दा नीतिगत रूप से हमारी शिक्षा व्यवस्था को प्रभावित कर रहा है। इसके जो मानक वर्तमान समय में गढ़े जा रहे हैं, उनके संदर्भ में समझना जरूरी है कि क्या वास्तव में यही मानक हैं जो शिक्षा की गुणवत्ता को स्थापित करते हैं और यदि ऐसा नहीं तो हमें पुनः शिक्षा की प्रकृति के बारे में विचार करना होगा और यह देखना होगा कि वास्तव में शिक्षा में किसी भी तरह की कारगुजारियों को क्या शिक्षा की गुणवत्ता का नाम दिया जा सकता है। हिन्दी के पाठकों तक शिक्षा की गुणवत्ता की बहस को ले जाने का यह एक प्रयास है।

यह अंक शिक्षा की गुणवत्ता पर दिगन्तर और आईसीआईसीआई सेन्टर फॉर एलीमेन्ट्री एज्युकेशन के संयुक्त तत्वाधान में जयपुर में वर्ष 2007 में आयोजित की गई दो दिवसीय सेमीनार में पढ़े गए पर्चों के संकलन से तैयार किया गया है। यह सभी पर्चें मूलतः अंग्रेजी में थे और हिन्दी में प्रकाशित होने से पूर्व 'कन्टम्परेरी एज्युकेशन डायलॉग' के जनवरी 2007 के अंक में प्रकाशित हो चुके हैं।

❑❑❑

शिक्षा विमर्श की आगामी योजना में 'अध्यापक' पर केन्द्रित अंक निकालना है। इस अंक के अतिथि संपादक प्रो. कृष्ण कुमार हैं। इस अंक में रचनात्मक सहयोग के लिए हमने बहुत से प्रयास किए हैं। शिक्षा विमर्श के साथ एकलव्य, भोपाल से निकलने वाली 'संदर्भ' एवं 'स्रोत' पत्रिकाओं में इसके विज्ञापन प्रकाशित किए हैं। साथ ही शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत संगठनों एवं व्यक्तिओं से विभिन्न माध्यमों से संपर्क किया है। तमाम प्रयासों के बावजूद प्राप्त होने वाले लेखों की संख्या निराशा की तरफ ले जाती है।

हम कोशिश कर रहे हैं कि इस विषय पर अधिक से अधिक शिक्षक साथी लिखें। लेकिन अभी तक हमें शिक्षकों के लेख प्राप्त नहीं हुए हैं। हम यह समझने में दुविधा महसूस कर रहे है कि क्या इसे शिक्षकों की चुप्पी माना जाए अथवा यह कि शिक्षक अपने बारे में स्वयं कुछ लिख पाने में समर्थ नहीं हैं या शिक्षक को आज भी अपनी समस्याओं/विचारों के लिए अपने पैरोकारों की जरूरत है ?

इस विज्ञापन को हम शिक्षा विमर्श में पुनः प्रकाशित करने के साथ ही देश की तीन अन्य प्रतिष्ठित पत्रिकाओं- रायपुर, छत्तीसगढ़ से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'अक्षर पर्व', पटना, बिहार से निकलने वाली 'प्राच्य प्रभा' और हिमाचल प्रदेश से निकलने वाली 'बच्चों का इन्द्रधनुष' में इस आशा के साथ प्रकाशित कर रहे हैं कि इस विषय पर शिक्षक साथी और शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वाले साथी अवश्य ही रचनात्मक योगदान करेंगे। ◆